International Journal of Applied Research 2018; 4(7): 56-58

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(7): 56-58
www.allresearchjournal.com
Received: 20-05-2018
Accepted: 26-06-2018

प्रीति प्रिया
शोधार्थी, विश्वविद्यालय, इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत।

Corresponding Author:
प्रीति प्रिया
शोधार्थी, विश्वविद्यालय, इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत।

मिथिला का समकालिन धर्म–शाक्त एवं शाक्तयेत्तर धर्म में ब्रह्म का तादात्म्य

प्रीति प्रिया

सारांश
वैसे तो धर्म कब प्रारम्भ हुआ और उसका प्राचीनतम स्वरूप तथा नाम क्या था यह सही रूप में आज भी इतिहासकारों के लिए पहेली सा बना हुआ है। किन्तु इतना सत्य है कि आदिमानव जो जंगलों में यायावरी जिन्दगी जी रहा था, उसने तब तक किसी धर्म की कल्पना नहीं की थी जब तक कि उसके समझ एक बड़ा विपत्ति चुनौती बन कर खड़ा नहीं हो गया था। इतिहासकारों का मानना है कि ये लोग तब झुड़ों और समूहों में नहीं रहते थे। ये जानवरों के तरह शिकार मार कर खाते थे झरना और नदियों में जल पीते थे तथा कभी–किसी हिंसक पशुओं के खाली छोड़े गए मांद में अथवा किसी पेड़ के दरार के नीचे छीपकर जिन्दगी जी लेते थे।

प्रस्तावना
दुनिया के तमाम लोग सैकड़ों वर्षों तक इस शिव लिंग की पूजा करते रहे कभी तो पत्थरों का बना कर और कभी मिट्टी का बना कर। मिट्टी का यह शिवलिंग पानी और बरसात में गल जाता था अतः अधिकांश शिवलिंग पत्थरों से निर्मित किए जाने लगे। किन्तु जैसे–जैसे समाज के पुरुष निर्माताओं ने अपने लिए एक पत्नी की आवश्यकता महसूस की उसी तरह उनकी कल्पना, में यह आई कि उसके प्रभु और भगवान के लिए भी एक स्त्री या पत्नी की जरूरत होती होगी। तब उसके ऐसा सोचने का कारण यह हुआ कि जहाँ उसने लठ गाड़े थे, लठ को मजबूती प्रदान करने के लिए उसने चारों ओर से जो मिट्टी कोड़ा और उससे लठ को ढका तो नीचे की धरती की आकृति भावाकर हो गई और वे इस भग की आकृति को ही भगवती मान बैठे। क्योंकि इसमें पानी डालने पर बह जाती थी और यह लठ के लिए आवश्यक था। अतः जहाँ शिव स्थापित किए गए उसके नीचे से जलधरी को भगवती के नाम से अलंकृत किया और इससे शिव शक्ति सम्मानित कहा गया और दोनों कि पूजा प्रारम्भ हुई। चूँकि पहले वह नंगा रहा करती थी इसलिए उसकी देवी भी नंगी रहती थी। आदि मानव ने जब अपने आप को नग्न अवस्था से बाहर निकाला तो अपने लिए वस्त्र की खोज की। और पहले वल्कल वस्त्र बने, और बाद में क्रमशः सूती, रेशमी एवं ऊनी, वस्त्रों का निर्माण हुआ। इन वस्त्रों को उन्होंने अपने देवता और देवियों को भी अर्पण किया। क्रमशः हम देखते है कि सतयुग युग में तो देवी और देवताओं की यथास्थिति बनी रही। किन्तु त्रेता युग (रामावातार के काल) में राम का सहस्रबाहु [1] रावण से युद्ध हुआ था जिसमें राम मारे गए और तब सीता, जो कि उनकी पत्नी थी, अपने आराध्य देव से प्रार्थना करने गई तो वह विकराल और नग्न हो सर्वांग काली हो गई थी। उसने राम द्वारा मारे गए विभिन्न सरो को काटकर मुडंमाला बनाकर अपने गले में धारण कर लिया था, उसके लाल–लाल जीभ लपलपा रहे थे। क्रोधाग्नी की ज्वाला भड़क उठी थी, उसके क्रोध को शांत करने के लिए भगवान शिव स्वयं [2] शव बनकर रास्ते में लेट गए और जैसे ही सीता का पैर शव पर पड़ा वह चौंक गई। पैर के नीचे अपने आराध्य देव को देखकर उसके होश उड़ गए, उसके जीभ दाँतों से कुचल गए, वह अश्रुमिश्रित अट्टहास कर उठी और तब शिव ने उसे सौम्य भाव में आने के लिए कहा। वह करूण विलाप कर उठी। उसने शिव से कहा, क्या मैं भी विधवा हो जाँऊगी? तब शिव ने उससे कहा– हे देवी ऐसा कैसे हो सकता है? राम तो मेरे भी आराध्य देव है। वह कैसे मर सकते है। उन्हें पुनः जीवित करने के लिए तुम अपनी कनिष्ठा अंगुलि को चीर कर उससे अमृत निकाल उन्हें पीला दो। और ऐसा करने पर राम पुनः उठ गए। इस तरह दो बातें स्पष्ट हुईं एक, राम का सर्वश्रेष्ठ बली होने का घमण्ड टूँट गया, और दूसरा पुरुषों पर स्त्रियों की प्रधानता बढ़ गई। इसके दो परिणाम हुए, पहला–नारी शक्ति का जागरण और दूसरा–सती प्रथा का जन्म। इन दोनों ही बातों ने देवताओं से अधिक देवियों की पूजा प्रारम्भ करवा दी। इसका सामाजिक स्वरूप स्त्रियों

का माँ बनना माना गया। इसके मातृशक्ति की भावना की वजह से मातृदेवी की पूजा समस्त विश्व सभ्यता में प्रारम्भ हो गई। जैसे कि दुर्गासप्तशती में कहा भी गया है–

''या देवी ! सर्वभूतेषू मातृरुपेण संस्थिताः।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।''

सम्भवतः भारत में जंगल युग के समापन के बाद जिस सिंधुघाटी के सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ था उस काल तक देवी–देवताओं का स्वरूप शिव और महाकाली के साथ मातृदेवी अर्थातः भू–देवी का ही बना रहा था। भू– देवी की परिकल्पना सिंधु–घाटी में प्राप्त उस नारी भूमि से है जो देवी की मूर्त्ति हड़प्पा में पाया गया था, क्योंकि उसके योनि भाग से कुछ अन्न के पौधे लगे थे। किन्तु शीघ्र ही वैदिक आर्य का आगमन हुआ और युग वैदिक बन गया। वैदिक आर्यों की देवी अब नग्न नहीं रही। उसके पाँच स्वरूपों की कल्पना की गई यथा–पहली शौम्या, गौरी बनी जो शिव की पत्नी हुई और महाकाली कहलाई दूसरी पार्वती, अर्थात तारा हुई जिन्हें लक्ष्मी तथा महालक्ष्मी कहा गया, तिसरी षोडसी हुई जिसे सरस्वती माना गया और क्रमशः देवताओं के राजा इन्द्र की पत्नी इन्द्रानी और ब्रह्मा की पत्नी गायत्री, ब्रह्माणी, ब्रह्मणी संध्या एवं सावित्री की अवधारणा हुई और इस तरह से ये पाँचों पचंभगिनी, त्रिपुर सुन्दरी, दक्षिण काली कहलाई। दक्षिणायनि का अर्थ होता है वैदिक विधान से पूजा और इसकी बदली हुई स्वरूप अंघोर शिव का तांत्रिक मार्ग बना, और समस्त तंत्रों की देवी काली [3] हो गई। इस तरह देवी शक्ति और देव शक्ति मिलकर विश्वव्यापी ब्रह्माण्ड का निर्माता और नियंता बन गया।

वैसे तो प्राचीन विश्व सभ्यता के तमाम धार्मिक विधानों में चाहे उस शक्ति की पूजा होती हो अथवा नहीं, किन्तु किसी–न–किसी रूप में शक्तियों का समावेश उन सभी प्राचीन धर्मों में देखने को मिल जाता है। इसका पुरातात्विक साक्ष्य यह है कि चाहे वह फारस की घाटी की सभ्यता हो, बेबीलोनिया, की सभ्यता हो, अथवा सुमेरिया या असीरिया की सभ्यता हो, सिंधु घाटी सहित उपरोक्त तमाम सभ्यताओं में हमें तंत्र के रूप में शक्ति का स्वरूप स्पष्ट देखने को मिलता ही है। यहाँ हम नहीं भूल सकते कि शक्ति का चाहे जो भी स्वरूप है वह मंगलदायक होने के साथ –साथ हर स्वरूप शक्ति से भरपूर है। स्त्री शब्द का प्राकट्य ही शक्ति से होता है और शक्ति जहाँ भी चाहे जिस रूप में भी उदित होता है वह सर्वशक्ति एक पुरुष से मिलकर चाहे वह भारत का शिव हो, मिश्र का सूरज हो बेबीलोनिया का आत्मशक्ति हो या असरिया का असुर शक्ति हो वह सभी स्वरूपों में और सभी काल में सभी प्रयोग कर्त्ताओं के साथ अतंतः सबलता का प्रतीक ही तो है।

मिथिला में भी सिंधु धाटी से लेकर बुद्धकाल के आगमन तक और फिर मुस्लिम और मुगलकाल के होने तक धर्म के जो स्वरूप आते–जाते और बदलते रहे, उन सबों में शक्ति का बदलता स्वरूप उपासकों ने महसूस किया और इसी कारण साधना के साथ–साथ शक्ति का प्रचार–प्रसार भी होता चला गया। जैसा कि हमने पूर्व में ही कहा है सिंधु घाटी के काल की महाकाली छत्रीय राजाओं के उद्‌भव और विकास के अनजाने काल खंड में सीता के स्वरूप में प्रकट होती है और राम की अनुगामी बन कर समस्त भारतीय धर्म वाङ्‌गमय को शक्तिशाली बना देती है। पुनः आर्यों की सभ्यता के विकास के साथ कृष्ण की राधा [4], रूकुमिनी [5] और सत्यभांमा [6] बनकर शक्ति के उन्हीं तीन स्रोतों को जिन्हे हम दुर्गा सप्तशती में नवरात्र मंत्र के रूप में देखते हैं, मुखरीत हो जाते हैं अथवा वही महाकाली, महालक्ष्मी एवं महा सरस्वती सी प्रतीत होती हैं।

चूँकि हम जानते हैं कि वैदिक आर्यों ने जो धर्म की परिभाषा की थी उसका सर्वश्रेष्ठ आधार स्त्रियों की धार्मिक स्वरूप का निधारण करना और उन्हें मातृ देवी मानकर शक्ति के शास्वत स्वरूप को प्रकट करना ही था और उसका ब्रह्म रूप मातृ देवी के स्वरूप में झलकती है। मातृदेवी अर्थात् माँ का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप भी छठी शताब्दी के आते–आते विशद शास्त्रों के अनुसार प्रौढ़ माताओं से भी ज्यादा वृद्ध माताओं को स्थापित करने का काल कहा गया है। इसी कारण इस काल में मातृशक्ति को स्पष्ट करते हुए तंत्र चिंतामणी [7] में (वृद्ध माता बलप्रदा) जोड़ दिया गया है। माताएँ जब वृध हो जाँय तो किस रूप में पुत्र को प्रबल शक्ति प्राप्त होती है इसकी व्याख्या विद्ववान चिंतकों ने इस तरह किया है कि जिस प्रकार अंगीठी तप कर अंगारों से भस्म के रूप में परिणत होने लगती हैं और धोखे से भी छू जाने पर जलाती नहीं है; ठीक उसी तरह बृद्ध स्त्रियाँ कामाग्नि में प्रवृत्त नहीं करती बल्कि उसके विपरीत ब्रह्मचर्य को ही शक्ति प्रदान करती हैं। अब चूँकि ब्रह्मचर्य सदा ही शक्ति वर्धक माना गया है, अतः शास्त्रकारों का यह कहना कि वृद्ध माता वल्पप्रदा होती हैं अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। पूर्वी भारत के मिथिलांचल में 'गहरी' नाम की एक वस्ती है वहाँ कि देवी ''दाढ़ी मैयो'' के में प्रदीप्त है, तो दूसरी तरफ मिथिला के मंगरौनी बस्ती में महामहोपाध्याय पंडित मदनउपाध्य की ईष्ट देवी तारा बुढ़ीमाई के नाम से प्रसिद्ध हैं।

माताओं की शक्ति साधना का भारतीय धर्म दर्शन और पूजा पद्धति में अत्यन्त विशिष्ट स्थान रहा है और इसी कारण से दसवीं शताब्दी में जब देवी भागवत से दुर्गा शप्तसती का संकलन किया गया तो इसमें इस बात पर अत्यंत बल दिया गया कि– या देवी सर्वभूतेषु मातृरुपेण संस्थिता, नमस्तस्यैः, नमस्तस्यैः, नमस्तस्यः नमोः नमः।

हालांकि छठी शताब्दी ईस्वी में भगवान बुद्ध ने अपने जीवन के अधेड़ अवस्था तक अर्थात् जीवन के तीसरे सोपान तक भिक्षुओं को स्त्री एवं स्त्री संबंधों से सर्वथा दूर रहने का व्रत संकल्प करवाया। किन्तु उसी बुद्ध ने लिच्छवि गणराज्य में आकर तात्कालिन वैशाली की नगर– वधु आम्रपाली से प्रभावित होकर उसे न मात्र दीक्षा दी बल्कि उसके आग्रह पर संघाराम का दरवाजा और बुद्ध साधना केन्द्रों को भी श्रद्धालु स्त्रियों के लिए खोल दिया। और तभी बुद्ध की पाल–माता वृद्ध प्रजापति गौतमी अपने बहु और बुद्ध की स्त्री यशोधरा के बुद्ध संघ में प्रवेश पा ली। भले ही बुद्ध धर्म मात्र 500 वर्षों में समाप्त हो गया किन्तु इसकी हीनयान और वज्रयान केन्द्रों में पुरूषों के साथ–साथ महिलाओं का प्रवेश भी जारी रहा। आज भी जहाँ बौद्ध धर्म है वहाँ पूर्ववत ही चल रहा है। खासकर थाईलैंण्ड, फिलिपिन्स, मोरोको, जावा, सुमात्रा, जापान के साथ–साथ चीन और ईरान के छोटे से भाग मैं भी यह पूर्ववत ही प्रचलित है।

धर्म शास्त्रों में भारतीय पूजा पद्वति को जिन मूल तीन भागों में विभक्त किया गया वे हैं [1] सनातन [2] हिन्दू व [3] अन्य। इन सभी शाखाओं में धर्म और उनके दर्शन मुख्य रूप से शक्ति और शक्तियों के केन्द्र बिन्दुओं पर स्थिर हो गए और उन सबों को मूलरूप से तीन शाखाओं क्रमशः शैव, वैष्णव और शाक रूप में उद्धृत किया गया। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि धर्मो के इन स्वरूपों को हम काल, पात्र और परिस्थिति के कसौटी पर कस कर ही देख सकते हैं। क्योंकि उसी आधार पर उनकी उपासना उन क्षेत्रों में देखने में आती हैं।

उदाहरण के लिए शिव से जुड़े तीर्थो में शैव मतावलम्बियों की बहुलता और उनके खान–पान और रहन–सहन में शिव से जुड़े तत्वों का होना इस बात का प्रमाण हैं। और शिव से प्रकट शक्ति ही उनके उपासना का ध्येय हैं। उक्त बात का तात्पर्य इससे हैं कि यदि हम द्वादश ज्योतिलिंग के समीप पड़ने वाले क्षेत्र में जाते हैं तो वहाँ के लोंगो में नशीले पदार्थो का प्रचलन, तथा उसका बोलबाला मिलता ही हैं। साथ ही साथ स्त्रियों और पुरूषों दोंनो में ही रूद्राक्ष की माला, भस्म तथा भस्मी के ठोप और तिलक की बहुलता उस क्षेत्र विशेष का वैशिष्ट्य कहा जाता हैं।

ठीक उसी तरह जब हम किसी वैष्णव क्षेत्र मैं अथवा विष्णु से जुड़े तीर्थ में जाते हैं तो वहॉ विष्णु का चक्रधारी स्वरूप का

प्रचलन मिलता हैं। वहाँ हवन आदि अवश्य ही देखने को मिलता हैं। विष्णु के तीर्थों की सबसे बड़ी पहचान यह होती हैं कि यहाँ के लोग मांसाहारी नहीं होते। मत्स्य और मदिरा का प्रयोग सर्वथा वर्जित होते हैं। वहाँ के लोग नशा से भी वर्जित होते हैं। ऐसे तीर्थों में आज के भारत में बाला जी का मंदिर प्रक्षेत्र, दक्षिण भारत, जगन्नाथ प्रक्षेत्र, उड़िसा, द्वारिका प्रक्षेत्र या गुजरात, आदि अपनी विशेषताओं के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं। किन्तु इनके ठीक विपरीत झारखण्ड का वैद्यनाथ मंदिर प्रक्षेत्र, उत्तर प्रदेश का काशी विश्वनाथ मंदिर प्रक्षेत्र, गुजरात का सोमनाथ मंदिर प्रक्षेत्र, मध्य प्रदेश का महाकाल मंदिर प्रक्षेत्र, मध्य भारत का ओमकारेश्वर मंदिर प्रक्षेत्र महाराष्ट्र का घृश्रेश्वर मंदिर प्रक्षेत्र, दक्षिण भारत में आंध्र और मद्रास, रामेश्वर सहित श्री शैल और मल्लिकार्जुन का मंदिर प्रक्षेत्र जो शैव धर्म के सिद्वान्तों से जुड़े हैं, उपरोक्त वर्जित आहार–व्यवहारों से परिपूर्ण दिखते हैं।

इन दोनों ही मतों से भिन्न शाक्त मतावलम्बियों के सिद्धान्त दर्शन तथा जीवन दर्शन और अन्य प्रक्रियाएँ सम्पूर्ण विश्व के सनातन सहित हिन्दू धर्मावलम्बियों में बिना शैव और वैष्णव की भिन्नता किये समरूप से और समभाव से विद्यमान हैं। वे पंचोपचार पद्धति के साथ–साथ उनकी सम्पूर्णता के लिए तांत्रिक प्रक्रियायें, जिनमें मातृशक्ति की अनुधारणाये शामिल हैं, एवं उनके जागरण हेतु पंचमकार साधना को भी सम्मलित करते हैं। अर्थात् इस पद्वति की समग्रता बलि प्रदान प्रथा से संयुक्त हैं।

बलि प्रथा कि पूर्णता तभी संभव होती हैं जब मद्य और मैथुन का प्रवेश होता है और इसकी सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए समुच्चय भाव से समर्पित होना पड़ता है। जैसा कि आचार्य राम वृक्ष बेनीपुरी ने भी लिखा है कि शाक्त साधना का मूल मंत्र ही वशीकरण हैं। वशीकरण की सिद्धि तभी हो सकती हैं जब सम्पूर्ण निःस्वार्थ भाव से समर्पित कर दिया जाए। इसमें समग्र समंपर्ण को मातृभाव से भी प्रबल माना गया है और उसी में न्योछावर हो जाना पड़ता हैं। किन्तु यहाँ ध्यान रहें कि इस पद्वति में अर्थात् शाक्त धर्म में नारी अर्थात स्त्रीत्व की प्रधानता होती हैं। जिसे कुछ अनसुलझे सिद्धान्तों में नारी अथवा नारीयों का साम्राज्य कह कर पुकारा गया हैं। ऐसी मान्यताओं की सिद्धि करने के लिए अथवा स्वरूप प्रदान करने के लिए उन्होंने कामाख्या के स्वरूप, जहॉ कभी स्त्रियों की सर्वोच्च सत्ता थी, वह असम के गुवाहाटी प्रदेश में तब भी अवस्थित थी और आज भी अवस्थित हैं। असम के इस प्रक्षेत्र को कामाख्या कहते हैं।यहाँ नारीयो की सर्वोच्चता सिद्ध करने के लिए एक विशेष पूजा पद्वति को न जाने कब से अपनाया गया है, जो आज भी प्रचलित है। उसे हिन्दु सम्प्रदाय कुमारी पूजा के नाम से जानते हैं और सिद्धि की सर्वश्रेष्ठ साधना का स्वरूप इसी पूजा पद्धति को माना गया हैं।

कामाख्या के तरह ही देश के विभिन्न भागों में मुख्य रूप से 108 शक्तिपीठों की वैसी जागृत स्थलियाँ हैं जहाँ वैदिक और तांत्रिक दोनों ही तरह की साधनाओं की सूचना हमें विभिन्न पुराणों से प्राप्त हैं। जिसकी चर्चा हमें देखने को मिलती है। मिथिला ही नहीं सम्पूर्ण बिहार में ऐसी दो जगह है जिन्हें झारखण्ड से अलग होने के पूर्व बिहार की पहली मूलाधार देवी माना गया है। उनके विषय में दुर्गा पुस्तक में लिखा हैं 'पाटला पटलावती' जिसे आज हमलोंग पट्टनदेवी के नाम से जानते हैं। और वह भी दो हैं एक बड़ी पट्टन देवी और दूसरी छोटी पट्टनदेवी। लेकिन शीर्षतः स्थान देवघर के मनसा देवी को प्राप्त हैं। जिसके विषय में शिव पुराण, विष्णु पुराण, देवी भागवत, श्रीमद्भागवत, कालिका पुराण सहित तंत्र कौमुवदी, मंत्र साधना आदि सभी ग्रन्थों में यह वर्णन प्राप्त होता हैं कि सती का हृदय इसी जगह गिरा हुआ था। इसी कारण सम्मोंहित होकर रावण द्वारा लंका ले जाने के क्रम में भगवान शिव ने ब्राह्मण रूपी विष्णु का सहारा लेकर अपने को हीं स्थापित कर दिया और यह स्थल बैद्यनाथ धाम या बैजू–नाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ मंदिर परिसर में ही शिव के वाम भाग में महा शमशानी महासती स्थित हैं जो समस्त कामनाओं और सिद्धियों को देने क लिए विश्व प्रसिद्ध रही हैं। ये सभी 108 मूल देवी तीर्थों में श्रेष्ठतम कही गयी हैं। यहाँ भी पूजा पद्वतियाँ और साधना का वही क्रम हैं जो कामाख्या सहित देश के अन्य देवी तीर्थों में होती चली आ रही है।

इसके बाद अविभाजित बिहार के जागृत शक्तिपीठ छिन्नमस्तिका, हजारी बाग जिले में दामोंदर और भैरवी नदी के संगम स्थल पर रजरप्पा के छिन्नमस्ता मंदिर को भी भारत का प्राचीनतम शक्तिपीठ माना जाता है। यह मंदिर हजारी बाग से 46 मील दूर रामगढ़ चतरा मार्ग पर स्थित है। इस मंदिर का निर्माण इतिहासकार एस. के. वसु के अनुसार कुछ हजार वर्ष पहले हुआ था। मंदिर गुम्बदाकार हैं। इसका शिल्प असम के कामाख्या मंदिर से मिलता–जुलता हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार इस मंदिर का निर्माण महाभारत काल में हुआ।

निष्कर्ष

मनुष्य जीवन में अपने उत्कर्ष पर तभी पहुँच सकता है, जब वह शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, सामाजिक शक्ति के साथ–साथ आध्यात्मिक शक्ति से भी संपन्न हो। शक्ति के बिना मनुष्य का कोई भी कार्य भली भांति संपादित नहीं हो सकता है। शक्ति के बिना शिव को भी शव समान माना गया है। भारत में शक्ति की आराधना सनातन काल से चली आ रही है। शक्ति के उपासकों ने 'पुरुष शक्ति' की तुलना में सदैव 'मातृ–शक्ति' को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। इसी 'मातृ–शक्ति' को हमारे ऋषि–मुनियों ने 'महाशक्ति' के नाम से अभिहित किया है। सृष्टि में सभी जीव–जंतु तथा भौतिक पदार्थ इसी महाशक्ति की देन हैं। भारतीय संस्कृति में 'मातृ–शक्ति' का स्थान सर्वोपरि माना गया है। यह मात्र नारी ही नहीं बल्कि पुरूष की चेतना शक्ति भी है।

संदर्भ–सूची

1. रामायण एवं हनुमान चालिसा–तुलसीदास गीता प्रेस गोरखपुर कोई अंक सभी में।
2. वही
3. कालिका पुराण–गीता प्रेस गोरखपुर एवं देवी भागवत पुराण
4. कृष्ण की पत्नी
5. सभी कृष्ण ग्रंथों से
6. वही
7. गोविन्द ठाकुर तंत्र चिन्तामनि प्रकाशक मिथिला शोध संस्थान पृष्ठ–18